## राजेन्द्र यादव

की रचनाएं

**जन्म**

२८ अगस्त १९२९ (आगरा) शिक्षा—एम० ए० १९५१

**प्रथम रचना**

प्रतिहिंसा (कहानी) कर्मयोगी १९४७

**रचनाएँ**

कहानी-संग्रह

देवताओं की मूर्तियाँ, खेल-खिलौने, जहाँ लक्ष्मी कैद है, अभिमन्यु की आत्महत्या, छोटे-छोटे ताजमहल, किनारे से किनारे तक, टूटना, ढोल, अपने पार, श्रेष्ठ कहानियाँ, प्रिय कहानियाँ।

उपन्यास

सारा आकाश, उखड़े हुए लोग, शह और मात, कुलटा, एक इंच मुस्कान, (मन्नू भण्डारी के साथ) अनदेखे-अनजान पुल, मन्त्र-विद्ध।

कविता-संग्रह

आवाज तेरी है।

सम्पादन

नये कहानीकार पुस्तकमाला में (कमलेश्वर, राकेश, रेणु, मन्नू और राजेन्द्र यादव की चुनी हुई कहानियाँ) एक दुनिया : समानान्तर, (नयी कहानियों का प्रतिनिधि संकलन) कथा-यात्रा।

समीक्षा

कहानी : स्वरूप और संवेदना। उपन्यास स्वरूप और संवेदना।

व्यक्ति-चित्र

औरों के बहाने

# टूटना

राजेन्द्र यादव

कहानियों का महत्त्वपूर्ण संग्रह

अक्षर प्रकाशन प्राइवेट लिमिटेड
२/३६, अन्सारी रोड, दरियागंज, नई दिल्ली-२

© राजेन्द्र यादव, १९७७

इस पुस्तक में भारत सरकार से रियायती-मूल्य पर प्राप्त
काग़ज़ लगाया गया है ।

मूल्य : १० रुपये
पेपरबैक : ७ रुपये

सविता बनर्जी को

प्रकाशक :
अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०
२/३६, अन्सारी रोड, दरियागंज
नई दिल्ली-११०००२

मुद्रक : राज कम्पोज कलाकेन्द्र,
भारत मुद्रणालय नवीन शाहदरा-११००३२

आवरण : हरिप्रकाश त्यागी

# तनाव

●

अचानक मिसेज़ सिन्हा की तबियत बहुत घबराने लगी। पहले तो सिर्फ़ ख़याल ही आया था कि मान लो ऊपर घूमते पंखे का कोई पेंच खुल जाये तो दस-बारह फ़ीट से यह पच्चीस सेर का पंखा धमाक् से उनकी पसलियों पर आ गिरेगा। जब सीढ़ियाँ लगाकर तीन आदमियों ने पंखा लगाया था, तब क्या उन्होंने देखा नहीं था, किस तरह उसे ऊपर कुण्डे से अटकानेवाले दोनों आदमियों के शरीर पसीने से तर-ब-तर हो गये थे और नीचे सीढ़ी पकड़े आदमी तना हुआ उन्हें घूर रहा था। एक चक्कर पूरा होने पर कहीं हल्की-सी टिक् होती है। ज़रूर कोई पेंच ढीला हो गया है और हो सकता है, इसी समय खुलकर अलग हो जाये... होनेवाली बात कभी-कभी यों ही मन में आ जाती है...हो सकता है, भगवान् उन्हें बचाना ही चाहते हों, वर्ना बात आती ही क्यों इस वक़्त मन में ? बहुत बार ऐसा होता है। जो बात सोचो, वही हो जाती है... अभी नेकी को बुलाकर पलंग सरकवाती हैं...इधर पलंग हटे और उधर पंखा धम् से गिरे तो ? सचमुच बाल-बाल बचेंगी...

और उन्होंने डूबते हुए आदमी की तरह घबराकर आवाज़ दी, "नेकीराम, ओ नेकीराम।" नेकीराम रसोई के बाहरवाले दरवाज़े में खड़ा-खड़ा साहब की क़ीमती सिगरेट ठीक उन्हीं के लापरवाह अन्दाज़ में पी रहा था...उसने आवाज़ सुन ली थी; लेकिन सिगरेट को देखा, अभी आधी और बची है। चुपचाप सिगरेट और आवाज़ पीता रहा...



"अरे ओ नेकीराम...ओ नेकीराम के बच्चे!" और इस बार अन्तिम सिरे के साथ ही उन्हें रुलाई आ गयी...कोई उनकी बात ही नहीं सुनता...मर भी जायें तो किसी को घण्टों ख़बर ही न हो। आया मिक्कू को लेकर जाने कब निकल गयी है, प्रेम में डालकर। वहाँ पार्क में अपने सहेले-सहेलियों में उसे तो होश ही नहीं रहता...दोपहर को तीन बजे से सजना शुरू हो जाती है...नये फ़ैशन का जूड़ा, बढ़िया ब्लाउज़ साड़ी...कोई कहेगा, आया है ? जाने किससे मिलने जाती है पार्क के बहाने ? मिक्कू रोज़ कपड़े गन्दे कर लेता है! आता है तो आँखें फूली हुई होती हैं ...पड़ा-पड़ा रोता रहता है...आकर सफ़ाई क्या करती है, दुबारा नहला ही देती है। बताओ, बच्चे की तबियत कैसे ठीक हो ? बीमार क्या पड़ीं, घर का सत्यानाश हो गया। नौकर तक उनकी परवाह नहीं करते...

"जी, मेम साहब।" हथेली की पीठ से होंठ पोंछता हुआ नेकीराम आकर खड़ा हो गया था।

"अब सुनायी दिया है तुम्हें ? दो घण्टे से चिल्लाते-चिल्लाते गले की नसें फूल आयी हैं। जितनी तबियत सुधरती नहीं है उससे ज़्यादा तुम लोगों की वजह से और ख़राब हो जाती है। इस बार मुझे ठीक हो लेने दो, एक-एक को बदलूँगी...एक वो आया महारानी हैं, बच्चे को छोड़ कर जाने कहाँ गप्पें लड़ाया करती है..." अचानक मिसेज़ सिन्हा को लगा, नेकीराम उनसे आँखें चुरा रहा है, "तेरे मुँह में क्या है ? जल्दी बता, तेरे मुँह में क्या है ? अभी पोंछ रहा था। क्या खाकर आया है ? अरे, मैं सब जानती हूँ, खूब घी डालकर पराँठा बनाया होगा ? डकार कर चले आ रहे हैं...उस दिन पड़ोस की छुटकी न बताती तो पता भी नहीं चलता कि हलुआ उड़ाया जा रहा है...सो ही तो मैं पड़ी-पड़ी सोचूँ, कहीं से बड़ा अच्छा हलुआ बनने की खुशबू आ रही है। पड़ोसियों के यहाँ बन रहा है...बड़ी सोंधी-सोंधी खुशबू है—बादाम, चिरोंजी, किशमिश सभी डाले लगते हैं। मेरे मुँह में बार-बार पानी भर-भर आता, हाय, मुझे भी मिल जाता थोड़ा-सा। लगता है, महीनों हो गये कोई अच्छी चीज़ खाये...मुझे क्या पता कि हलुआ हमारे ही यहाँ बन रहा है और नेकीराम

और आया भोग लगा रहे हैं।"

"साब, मुझे बुलाया था आपने ?" नेकीराम को लगा कि बात उखड़ी तो घण्टों का पुराण चलेगा। बच्चे के फैले कपड़ों को यों ही तह करता-खोलता रहा।

मिसेज़ सिन्हा भूल गयीं कि क्यों बुलाया था। अचानक रुककर याद करती बोलीं, "देखा, कैसी बात पलटी है ? अरे नेकीराम, मैं दस साल में तेरी नस-नस पहचान गयी हूँ। तू मुझसे चालाकी मत किया कर..."

नेकीराम मुस्कुरा दिया, "साहब, आपने मुझे बुलाया था। मैं बीड़ी पी रहा था, इसलिए मुँह पर हाथ रख लिया। आपको तो पता नहीं, क्या-क्या वहम..." झटके से नेकीराम रुक गया; 'वहम' शब्द पकड़कर मिसेज़ सिन्हा फिर भाषण शुरू कर देंगी। फ़ौरन ही बात बदलकर बोला, "आपको दवाई देनी है मेम साहब ?"

"नहीं, ग्लूकोज़ मिलाकर पानी दे। तबियत बहुत घबरा रही है।" मिसेज़ सिन्हा पलंग के सहारे ज़रा-सा उठ आयी थीं, फिर लेट गयीं। उन्हें लगने लगा, जैसे सचमुच उनकी तबियत बहुत घबराने लगी है। दिल डूबने लगा है...नस-नस पहचानने की बात वे मिस्टर सिन्हा से भी कहती हैं, आजकल अक्सर ही...अरे 'काम बढ़ गया है' का तो बहाना है। मैं क्या समझती नहीं हूँ ? मैं सब जानती हूँ, काम के बहाने वहाँ स्टैनों को रोके रखते हैं। हो सकता है, ऑफ़िस से निकलकर इस वक़्त भी दोनों किसी रेस्त्राँ के कोने में बैठे-बैठे गुटर-गुटर बातें कर रहे हों... इन स्टैनो-ऑपरेटर औरतों का कोई धरम थोड़े ही होता है...फिर खूबसूरत को देखकर यों ही इनकी लार टपकती रहती है...उस दिन खुद ही मुँह से निकल गया था, "इस बार स्टैनो बड़ी स्मार्ट आयी है, पहली जो काम दस दिनों में करती थी यह उसे दो दिनों में पूरा कर डालती है। कोई काम पैण्डिंग में नहीं रखती"...हाँ, हाँ, स्मार्ट है तो सभी तरफ़ स्मार्ट होगी। इनको क्या स्मार्ट लगता है, मैं क्या अच्छी तरह समझती नहीं हूँ ? इनकी नस-नस...

नेकीराम के हाथ से ग्लूकोज़ का गिलास लिये-लिये ही कराहकर तकिये के सहारे उठने की कोशिश करते हुए बोलीं, "मेरी तो तबियत बुरी



तरह घबरा रही है। ज़रा पूछियो, कितनी देर और लगेगी ? छह तो बज गये होंगे..."

"सवा पाँच बजे हैं !" नेकीराम कहकर खड़ा हो गया कि क्या अब भी साहब को फ़ोन करना है, "आते ही होंगे। साहब को खुद ही बड़ी चिन्ता है। आजकल वैसे भी देर नहीं करते...।"

"तुमसे जो कह रही हूँ, वो कर। बेकार मेरा दिमाग़ खाली करने की ज़रूरत नहीं है।" ग्लूकोज़ का गिलास खाली करके नौकर की तरफ़ बढ़ाते समय उन्हें बेहद गुस्सा आने लगा। घर के नौकर-चाकर से लेकर मिस्टर सिन्हा तक ऐसा समझते हैं, मानो उन्हें बेकार ही झिक-झिक करने की आदत है। कोई उन्हें सीरियसली लेता ही नहीं। इस बात को वे इधर कई दिनों से महसूस कर रही हैं। मि० सिन्हा तो दिन में एक बार ज़रूर ही कह देते हैं, "माई डियर, तुम्हें वहम हो गया है। तुम्हें कोई बीमारी नहीं है। और यों थोड़ा-बहुत तो..." उनकी देखा-देखी नौकर-आया सभी...

बोलो, यह थोड़ा-बहुत होगा ? लगता है, जैसे हाथ-पैरों की जान निकली जा रही हो, दिल डूब रहा हो और सारे शरीर के जोड़-जोड़ दुख रहे हों। बदन अलग ठण्डा पड़ा जा रहा है...

'टर्रर्र...टर्रर्र...' शायद मिस्टर सिन्हा आ गये...मिसेज़ सिन्हा सरककर आराम से लेट गयीं। चेहरे पर और भी दयनीय असहायता की शिथिलता उमड़ आयी। नेकीराम ने दरवाज़ा खोल दिया है, पड़ोस में बजते रेडियो की आवाज़ें भीतर घुस आयी हैं, लेकिन जूतों की खटर-खटर पास नहीं आ रही। क्या कर रहा है वहाँ खड़ा-खड़ा नेकीराम ? कुछ देर राह देखकर उन्होंने खुद ही आवाज़ दी, "नेकीराम कौन है ?" उफ़, ये पड़ोसी भी कैसी ज़ोर-ज़ोर से रेडियो बजाते हैं। इनके यहाँ कोई बीमार होगा तो वे लाउडस्पीकर बजवायेंगी। इन्हें इतना खयाल नहीं है, पास में कोई बीमार पड़ा है ? वे ही क्यों किसी का खयाल करें ? कुढ़-कुढ़कर खाक हुए जाते हैं। अरे, इतनी ऊँची पोस्ट तो इन्हें आज मिली है। कल तक तो जैसे काम चलाते थे, वो हम ही जानते हैं। तुम्हारे यहाँ दुनिया-भर के फ़र्नीचर, मिठाइयाँ आते थे, तब तो हम नहीं कुढ़े। तुम रोज़ नयी-

नयी साड़ी लटकाये घूमती थीं, नाटेराम नये सूट में गर्दन फुलाकर चलते थे...ज़रा लम्बे होते तो पता नहीं क्या आसमान सिर पर उठाते ! इस बार मटकती हुई टेलिफ़ोन करने आयेगी तो मना कर दूंगी । "मिस्टर सिन्हा, ज़रा एक टेलिफ़ोन करना है ।" बोलो, टेलिफ़ोन के लिए, इतने हाव-भाव और सैन मटकाने की क्या ज़रूरत है ? जानती है कि मैं बीमार रहती हूँ तो सिन्हा साहब को फाँस ले । वही आयी होगी । आती तभी है, जब वो आनेवाले हों । सख्त गले से पूछा, "कौन है नेकीराम ?"

"मेम सा'ब, ड्राइवर है । साहब का बैग और फ़ाइलें लेकर आया ।" वह रसोई में जाने लगा ।

"और साहब ?" उनकी भौंहें तन गयीं ।

"वो देर से आयेंगे । किसी होटल में पार्टी है । खाने को मना करवाया है । उन्हें होटल में छोड़कर आया है ।"

"गया क्या ?" उन्होंने एकदम उठकर पूछा, "अरे, हमसे तो पूछना चाहिए । कुछ मँगाना हो, कहलवाना हो । वहीं-से-वहीं चलता कर दिया। अब मेरा मुँह क्या देख रहा है, जल्दी जाकर पकड़ उसे, कहना, मेम साहब की तबियत बहुत खराब है । एकदम बुलाया है । डाक्टर को ले चलें...।"

नेकीराम उलटे पाँव दौड़ पड़ा । दरवाज़ा खोला तो बाहर गूंजते रेडियो का गाना भीतर झाँका, फिर खट्-से दरवाज़ा बन्द हो गया । वे संतोष से निढाल होकर पड़ गयीं...सचमुच, तबियत बहुत ही खराब हो गयी है । कैसी थकान है ! वे देर तक अपनी नब्ज़ पर हाथ रख देखती रहीं—समझ में ही नहीं आया कि तेज़ चल रही है या धीमी ! सिरहाने मेज़ से थर्मामीटर उठाया और देर तक पारे की महीन रेखा को पहचानने की कोशिश करती रहीं, पतली-पतली कई लकीरें थीं। उहुँक, जाने कौन-सी है ! हाथ से झटका तो कलाई दुखने लगी...पहले एक बार के झटके में ही पारा नीचे आ जाता था । बीमारी ने कैसा कमज़ोर कर डाला है !

जब नेकीराम आया तो उन्होंने झट मुँह से थर्मामीटर निकाल लिया, "मिल गया ?"

"जी सा'ब", वह दोनों हाथ साबुन से मलने की तरह चला आ रहा था, "जाते ही साहब को खबर कर देगा ।"



संतोष से उन्होंने गहरी साँस ली और जैसे 'कुछ हुआ ही न हो' के भाव से थर्मामीटर उसकी ओर बढ़ाकर कहा, "देखियो नेकीराम, पता नहीं मेरी तो आँखों में भी जाने क्या हो गया है..."

नेकीराम ने खिड़की के पास ले जाकर पारा देखा, "सा'ब ये तो निन्यानबे से ज़रा ही कम है ।"

'नहीं-नहीं', अविश्वास से उन्होंने हाथ बढ़ा दिया, "ला, मुझे दे । इतना कम कैसे हो सकता है ? मेरा तो सारा शरीर भट्ठी की तरह जल रहा है ।" थर्मामीटर को कई तरह हिलाया-डुलाया । पारा इतना नीचे कैसे हो सकता है...भीतर कहीं डर था कि आते ही झल्लायेंगे, बीच पार्टी से उठवा लिया...वे थर्मामीटर को बग़ल में लगाकर हिलाती-झटकारती रहीं । ज़रा ठीक हो जायें, इस बार पार्टी में जायेंगी तो नयी चन्देरी साड़ी पहनेंगी ।

लेकिन टैम्परेचर से ही क्या होता है ? उनका तो भीतर से ही दिल घुटा जा रहा है । दिमाग़ में जैसे पंखा चल रहा हो...हाँ, अब याद आया कि नेकीराम को क्यों बुलाया था ! उसके गिर पड़ने की आशंका साक्षात् भय बनकर उनका गला घोंटने लगी थी...अगर सच ही गिर पड़े तो घण्टों किसी को पता भी नहीं चलेगा । यों ही कुचले हुए टमाटर की तरह पिस जायेगी...मक्खियाँ भनभनाती रहेंगी...पसलियों का तो चूरा हो जायेगा और आँतें बाहर निकल पड़ेंगी...अगर न मर पायीं तो बेचैनी से पड़ी-पड़ी बुरी तरह तड़पेंगी...एक बार रेल से कटी हुई गाय देखी थी, महीनों उबकाई आती रही । अपने मृत-रूप की इस कल्पना से फिर उबकाई आने लगी । पलंग से आधी लटककर देर तक चिलमची के ऊपर ओक्-ओक् करती रहीं । कनपटियाँ दुखने लगीं, नाक-आँख में पानी आ गया, लेकिन उलटी नहीं हुई । सीधी लेटी तो हाँप रही थीं । मिक्कू बेचारा अनाथ हो जायेगा...आजकल तो इन्हें ऑफ़िस के सिवा कुछ सूझता ही नहीं है ।...उस बेचारे की ज़िन्दगी खराब हो जायेगी...और कहीं ये ऑपरेटर-स्टेनो घर आने लगीं तो हो गया कल्याण । कुछ कहो तो कह देते हैं झल्लाकर, "ऐसा ही है तो मैं यह सब छोड़-छाड़कर कोई छोटी-सी नौकरी किये लेता हूँ । लेकिन फिर मुझसे मोटर, टेलीफ़ोन,

सोफ़ा, होटल-नौकरों की बात मत करना। सब काम आप ही कर लेना।" बोलो, ये सब अब छोड़े जायेंगे ? क्या इज़्ज़त रह जायेगी, अड़ोस-पड़ोसियों की निगाह में ? 'छोड़ दो, छोड़ दो', करते हैं, यह नहीं सोचते कि यह सब है किसकी वजह से ? किसकी क़िस्मत से यह सब आया ? अपनी क़िस्मत थी तो वही ढाई-सौ रुपल्ली की नौकरी करते थे। घर पर एक कुर्सी ढंग की नहीं थी बैठने को; मेरी ही बदौलत तो आज ढाई हज़ार मिलते हैं। मुँह से लाड़ कर देने से क्या होता है कि 'तुम मेरे घर की लक्ष्मी हो...तुम आयी हो तो यह सब आया है। वर्ना मेरे पास था ही क्या ?' और घर की लक्ष्मी की फ़िक्र ही नहीं कि कहाँ पड़ी है, कैसी है ? दूसरे लोग अपनी-अपनी बीवियों को लेकर रोज़ शाम को सिनेमा जाते हैं, होटल जाते हैं—अच्छी-से-अच्छी जगह घुमाते हैं। यहाँ तो जब भी कुछ कहो तो सुन लो, "नये काम की नयी ज़िम्मेदारियाँ होती हैं। जो जितनी ऊँची पोस्ट पर है, उसकी उतनी ही जान फँसी है।" भाड़ में गयी तुम्हारी नयी ज़िम्मेदारियाँ...और लोग तो तुम्हारी तरह रात को नौ-नौ बजे नहीं आते, तुम्हारी तरह गट्ठर-भर फ़ाइलें लाकर रात को एक-एक बजे तक आँखें नहीं फोड़ते, 'आज ये डायरेक्टर आ रहा है, वो मिनिस्टर जा रहा है' के नाम पर भागे-भागे नहीं फिरते...तुम्हारे लिए तो ऑफ़िस-ही-ऑफ़िस रह गया है; मैं तो सुविधा के सामान में से एक रह गयी हूँ...घर में मेरी आज इज़्ज़त ही क्या रह गयी है ? किसी को एक मिनट बात करने की तो फ़िक्र या फ़ुरसत है नहीं...

और जब आगे-आगे मिस्टर सिन्हा और पीछे-पीछे डॉक्टर, झपटते हुए आये, तब तक उन्होंने रो-रोकर आँखें सुजा ली थीं। जूतों की आहटों से बड़ी मुश्किल से पलकें उठायीं और यों ही सूनी-सूनी निगाहों से देखा, फिर जैसे उनकी पलकें अपने-आप ही मुँद गयीं। सुनायी दिया, "रानी, रानी...क्या हुआ ?" मन हुआ, मुस्कुरा दें...यह आपस में लेने का नाम डॉक्टर के सामने तो मत लो। चेहरे पर कोई भाव न आ जाये, इसलिए उन्होंने बहुत कराहकर दूसरी ओर करवट बदल ली। दोनों पलंग का चक्कर काटकर दूसरी ओर आ गये। जब बहुत आहिस्ते से मि० सिन्हा ने कन्धा पकड़कर झकझोरा, "रानी, क्या हुआ ?" तो



मलवटोंवाला माथा और भारी पलकें उठाने की कोशिश में धीरे से कराहकर उन्होंने अनचीन्हें पूछा, "एँ ऽ ऽ ऽ, कौन ?"

"मैं हूँ डियर, मैं।" बिलकुल उनके मुँह के पास मुँह ले जाकर मि० सिन्हा ने घबराये हुए कहा।

"कौन नेकीराम...?" वे हाँपती-कराहती रहीं, "नेकीराम, तेरे हाथ जोड़ूँ भैया, ज़रा होटल में फ़ोन कर दे...मरने से पहले मेरा मुँह तो देख जायें"...फिर वे ज़ोर-ज़ोर से साँसें लेती रहीं, आँखों से आँसू ढुलकते रहे..."हाय, हाय...मेरे बच्चे को अच्छी तरह रखना...।"

सुना, मि० सिन्हा ने डॉक्टर से कोमा या डिलीरियम और हार्ट-सिंकिंग जैसे शब्द बोले थे। घबराहट के कारण उनके शब्द थरथराते निकल रहे थे, भारी आवाज़ में डॉक्टर हूँ-हूँ कर रहा था। उनके मन में आता था, झट से कम्बल-तकिया फेंक कर उठ बैठें और खिलखिला-कर हँस पड़े, "कहो, कैसा छकाया ?" लेकिन मि० सिन्हा की घबरा-हट से उन्हें जाने कैसा संतोष मिल रहा था।

सधी उँगलियों ने उनकी दोनों पलकें ऊपर खींचकर देखीं। डॉक्टर की आँखों-से-आँखें न मिलें, इसलिए वे पुतलियाँ चढ़ाये रहीं...फिर नब्ज़, स्टैथेस्कोप का पसलियों और पेट पर स्पर्श, गुदगुदी रोकने के लिए साँसों का नियंत्रण, बाँह में पट्टी बाँधकर ब्लड-प्रेशर लिया जाना... बिना आँखें खोले भी डॉक्टर की हर खटर-पटर के ऊपर चिन्ता और परेशानी से मँडराता मि० सिन्हा की थकी सूरत को वे महसूस कर रही थीं...यह डॉक्टर तो कम्बख़्त इस बुरी तरह हर चीज़ की जाँच कर रहा है, ज़रूर पता लग लेगा।...वे बीच में एकाध बार दर्द से कराहीं भी...फिर ध्यान आया; पता नहीं कोमा में कराह निकलती है या नहीं...वे चुप हो गयीं।

खर्र खर्र...डाक्टर ने काग़ज़ पर कुछ लिखा। "इसे जल्दी ले आइये···नौकर से कहिये, गाड़ी में हमारी दूसरी पेटी रक्खी है, उठा लायेगा..." फिर मि० सिन्हा का रसोई की तरफ़ जाना, बातों की हल्की भनभनाहट, फिर चार क़दमों का आगे-पीछे दौड़ते हुए-से दरवाज़े की तरफ़ लपकना, दरवाज़े का खुलकर बंद होना—यह सब वे कानों की

आँखों से देखती रहीं, बग़ल में डॉक्टर सिरिंज के खोलने-बंद करने की फच्-फच् करता रहा...पता नहीं, किस चीज़ का इंजेक्शन लगाये दे रहा है...बाद में कुछ उलटा-सीधा असर हुआ तो ? अब भी समय है, वे कराहकर आँखें खोल दें, जैसे अभी होश आया हो...वे कुनमुनाई भी; लेकिन इतना सब बढ़ाकर स्वस्थ आदमी की तरह उठ बैठने की हिम्मत नहीं हुई...दिल धड़कता रहा...जाने क्या इंजेक्शन है, कहीं सचमुच तबियत खराब हो गयी तो ?

नेकीराम पेटी ले आया था, इसका मतलब मि० सिन्हा खुद दवा लेने दूकान पर गये हैं। ज़रा-सी आँखें मिचमिचाकर देखने की कोशिश की। डॉक्टर बत्ती की आड़ में सिरहाने की तरफ़ पड़ता था। वहीं कुछ शीशियाँ-डिबियाँ खोल बंद कर रहा था...आँखें पूरी खोल लीं—खिड़की, टँगे कपड़े, आलमारी; सिर मोड़कर देखने की इच्छा को बड़ी मुश्किल से रोके रख रही थीं कि खट् से दरवाज़ा खुला। मि० सिन्हा के दौड़ते हुए जूते पलंग तक आ गये। आँखें मूँद लीं; लेकिन दया से मन भर आया। बेचारों को व्यर्थ ही परेशान कर रही हूँ, बत्तीस रुपये डॉक्टर लेगा, दस-बारह की दवा आ जायेगी।...वो अगर अपने दोस्तों में दो रुपये ज़्यादा खर्च कर देते हैं तो जान खा जाती हूँ...सारे दिन काम से बेचारे थके-माँदे आयें और फिर डॉक्टर, दवा, मरीज़ की तीमारदारी...

फट्ट ! दवा की शीशी तोड़कर डॉक्टर सिरिंज में दवा भर रहा है, अब बुलबुले निकाल रहा होगा, सुई पर निगाहें टिकाये-टिकाये...अब ये लोग इधर आ रहे हैं···अभी भी कराहकर आँखें खोल दें, पूछ लें, 'क्या बजा है ?' लगेगा, अभी होश में आ रही हैं...अभी भी समय है।

बाँह पर स्प्रिट का ठण्डा, रोमांचकारी स्पर्श हुआ और खच्च्-से सुई घुसी तो दाँत भींचकर वे कुसमुसाकर रह गयीं...पता नहीं, क्या दवा है; सुई निकालकर फाहे से जगह मलता हुआ डॉक्टर कह रहा था, "अब आराम से सोने दीजिये। उठेंगी तो तबीयत ठीक हो जायेगी।"... तेरा सिर...

फिर धीरे-धीरे अँधेरा घिरने लगा···आवाज़ें डूबने लगीं...डॉक्टर



और मि० सिन्हा की हर गतिविधि को देखती कल्पना धुँधलाने लगी।

"रानी, रानी...कैसी तबियत है ?" उन्होंने दूर से सुना तो एक पल को हिचक हुई, अभी डॉक्टर कहीं फिर से दूसरा इंजेक्शन लगा दे... रोशनी को लड़ते हुए धीरे-से आँखें खोल दीं। पहले सब कुछ धुँधला-धुँधला लगा, फिर साफ़ हुआ—मि० सिन्हा सोये हुए मिक्कू को कन्धे पर लिये बाथरूम से निकलकर बिस्तर की ओर जा रहे थे। उन्होंने धीरे-से कमज़ोर आवाज़ में पूछा, "आया आ गयी पार्क से ?"

"आकर चली भी गयी।" मि० सिन्हा ने झुककर मिक्कू को बिस्तर पर सुलाकर उढ़ा दिया।

बड़ा सन्नाटा है, ट्राम-बसें भी नहीं चल रहीं। पूछा, "क्या टाइम हो गया ?"

"ढाई बजा होगा।" मि० सिन्हा ने उनके बिस्तर की ओर आते हुए जवाब दिया। आहिस्ते से पाटी पर बैठकर पूछा, "कैसी तबियत है...?"

"अरे ढाई बज गया ? तुमने कपड़े भी नहीं उतारे।" चौंककर मिसेज़ सिन्हा ने कहा और उठने की कोशिश करने लगीं।

"नहीं, नहीं, लेटी रहो रानी..." कन्धे पकड़कर लिटाते हुए मि० सिन्हा ने उन्हें रोक दिया। सचमुच वे उन्हीं दफ़्तर वाले कमीज़-पतलून में थे, कोट उतारकर सोफ़े पर डाल दिया होगा।

पूछा, "तुमने खाया-वाया भी या यों ही जब से...मुझे लगा, शायद बीच में डॉक्टर-वाक्टर भी आया था..."

"आया होगा...मैंने खाना खा लिया...तुम चुपचाप लेटी रहो।"

उन्होंने मि० सिन्हा का हाथ अपने हाथ में लेकर रुँधे गले से कहा, "सचमुच, मेरी बीमारी से तुम्हारा खाना-सोना सब गड़बड़ा गया है, सारे दिन ऑफ़िस से खटकर आओ, फिर ये मुसीबत। नया-नया ज़िम्मेदारी का काम है, सो उसमें तुम्हारी कुछ सेवा करने से तो रही, उलटी मुसीबत खड़ी किये रखती हूँ। सच में, मैं बहुत बुरी हूँ, तुम्हारे जैसे के

लायक़ नहीं हूँ।" उनके गालों पर आँसू ढुलक-ढुलककर आने लगे...

"नहीं, रानी नहीं, यों मन ख़राब मत करो। हारी-बीमारी तो चलती ही रहती है।" उन्होंने हथेलियों से आँसू पोंछ दिये और नींद या किसी और कारण से उमड़ती अपनी उबासी को जबड़े भींचकर दबाते हुए कहा, "कल से तुम्हारे लिए एक नर्स का इन्तज़ाम कर दिया है। सुबह सात पर आ जायेगी, सारे दिन रहेगी..."

"तुम मेरी इतनी चिन्ता क्यों करते हो ? देखो नया काम है..." कृतज्ञ सुख में भीगी मिसेज़ सिन्हा रोती रहीं...

●

# मरनेवाले का नाम

●

माला ने किशन को झकझोरकर जगा दिया, "अरे सुनो-सुनो... उठो तो सही।" और इससे पहले कि वह बौखलाकर उठे, वह हाँफती हुई जल्दी से बोली, "नेहरूजी मर गये...।"

"हैं...?" किशन झटके से उठ बैठा, "कौन कहता है ?"

"अभी तो रेडियो बोलकर चुका है।"

उसने मन ही मन सन्तोष की साँस ली—कहीं आग-वाग नहीं लगी है। लेकिन दोनों कुछ क्षण चुप रहे। माला चुनौती के ढंग से उसे घूरती रही और वह चेहरे पर अतिरिक्त भकुआया-भाव ओढ़े खिड़की देखता रहा। अचानक माला फट पड़ी, "अब तो खुश हो। नेहरू पक्षपाती है, नेहरू अपने ही मायाजाल से मुग्ध हैं, नेहरू ने कुछ नहीं किया...बहुत कहते थे न...।" और उसकी भरी आँखों से आँसू ढुलकने लगे, "मिठाइयाँ बाँटो।"

मानो नेहरू की मृत्यु का कारण वही हो...अभी तक नींद की ख़ुमारी उड़ नहीं पायी थी। क्या सचमुच वह आदमी नहीं रहा जो नल और दरवाज़े की तरह ज़िन्दगी की अघोषित सचाई हो गया था, जिसकी कमी तभी महसूस होती है जब वह नहीं रहता, जैसे नल का कट जाना। सामने खड़ी माला को ललकारती मूर्ति और नल के कट जाने की बात से उसे हुआ जैसे वह हल्के-से मुस्कुरा उठेगा। नहीं मुस्कुराना ग़लत हो जायेगा। दो दिनों की तो छुट्टी होगी ही। सारा काम-धाम रुक